नगर एवं औद्योगिक विकास निगम

बनाम

दोसु आर्देशिर भिवंडीवाला और अन्य।

(सिविल अपील संख्या 6652/2008)

14 नवंबर 2008

(एस.एच. कपाडिया एंड बी. सुदर्शन रेड्डी, जे.जे.)

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226- वितरण रीट याचिका का- भूमि के बड़े क्षेत्र से संबंधित विवाद- प्रत्यर्थी नंबर 1 ने भिवंडीवाला के न्यास के न्यासी के रूप में 35 वर्षों की लंबी देरी के बाद उक्त भूमि का दावा करते हुए उन्होंने यह कहते हुए रिट याचिका दायर की कि अपीलकर्ता जो राज्य का साधन है, बिना भूमि का अधिग्रहण किए एवं मुआवजे का भुगतान किए बिना अवैध रूप से और अनाधिकृत रूप से उपरोक्त भूमि का उपयोग कर रहा था- उच्च न्यायालय, राज्य सरकार के उचित शपथ पत्र के अभाव में और प्रत्यर्थी सं. 01 के हक के बारे में निष्कर्ष निकाले बिना, राज्य के वकील की मौखिक दलील पर विचार कर भूमि के अधिग्रहण हेतु एवं प्रत्यर्थी सं. 01 के पक्ष में प्रश्नगत भूमि के हक/स्वामित्व के निर्धारण हेतु निर्देशित किया गया। मामले को नए से विचार हेतु उच्च न्यायालय को भेजा गया। चूंकि उच्च न्यायालय के द्वारा उनके पूर्व फैसले में उच्च

न्यायालय की संविधान के तहत अनुच्छेद 226 रिट क्षेत्राधिकारिता के उपयोग में मापदंडों को ध्यान में नहीं रखा था। राज्य सरकार का उचित शपथ पत्र दाखिल न करने और न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में प्रभावी ढंग से भाग नहीं लेकर मूक दर्शक बने रहने में राज्य सरकार का आचरण निंदनीय है।

भूमि के एक बड़े हिस्से को लेकर विवाद खड़ा हो गया। भिवंडी वाला ट्रस्ट के ट्रस्टी के रूप में प्रत्यर्थी सं. 01 ने 35 साल की लंबी देरी के बाद उक्त भूमि का दावा किया। उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर कर कहा कि अपीलकर्ता राज्य का एक साधन है जो बिना भूमि का अधिग्रहण किए एवं मुआवजे का भुगतान किए बिना अवैध रूप से और अनाधिकृत रूप से उपरोक्त भूमि का उपयोग कर रहा था।

उच्च न्यायालय ने, राज्य सरकार की ओर से उचित शपथ पत्र के अभाव में और प्रत्यर्थी सं. 01 के अधिकार के बारे में कोई निष्कर्ष निकाले बिना राज्य के वकील के मौखिक दलील पर स्वामित्व को मान्यता देने वाली रियायत के रूप में मानते हुए भूमि के अधिग्रहण का निर्देश दिया प्रश्नगत भूमि का स्वामित्व प्रत्यर्थी के पक्ष में आदेश के खिलाफ पुनर्विलोचन याचिका खारिज कर दी गई इसलिए वर्तमान अपील करता है।

न्यायालय ने राज्य सरकार के आचरण के बारे में कुछ टिप्पणियों के साथ अपील की अनुमति दी।

अभिनिर्धारित 1.1. उच्च न्यायालय ने ज्यादातर ए.जी.पी. के मौखिक बयानों पर भरोसा किया और अपीलकर्ता द्वारा अपने जवाबी शपथ पत्र में इस आशय के कुछ अस्पष्ट कथन किए गए थे कि प्रश्नगत भूमि एक निजी भूमि है और तदनुसार भूमि का अधिग्रहण का निर्देश देने वाली रिट याचिका का निपटारा कर दिया। उच्च न्यायालय के आदेश में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि भिवंडी वाला ट्रस्ट रिट याचिका दायर करने की तारीख तक वैध और मौजूदा स्वाामित्व वाली भूमि का सही और पूर्ण मालिक बना हुआ है। ना ही भूमि की प्रकृति के बारे में उच्च न्यायालय के द्वारा कोई निष्कर्ष निकाला गया है जो कि सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है जिसका इस मुद्दे पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है कि रिट याचिका में कोई राहत पाने के लिए प्रत्यर्थी का अधिकार क्या है। इस बात का भी कोई निष्कर्ष नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 01 जिसने एक व्यक्ति के रूप में रिट याचिका दायर की थी वह उक्त ट्रस्ट का ट्रस्टी है और इस प्रकार ट्रस्ट की ओर से मुकदमा चलाने का हकदार है। उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया है कि ट्रस्ट को याचिकाकर्ता के रूप में शामिल किए बिना ट्रस्टी होने का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के द्वारा रिट याचिका दायर करने का क्या प्रभाव होगा। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्वारा उसकी रिट याचिका में दिए गए बयानों को नजरअंदाज कर दिया, जिसमें उसने अपना नाम वारिसान के रूप में अभिलेख में दर्ज करने की मांग करते हुए तहसीलदार को अभ्यावेदन दिया था।

उच्च न्यायालय ने रिट याचिका कर्ता द्वारा रिट याचिका में दिए गए ऐसे बयान के प्रभाव पर भी कभी विचार नहीं किया। उच्च न्यायालय ने इस बात पर भी विचार नहीं किया कि क्या दावा की गई राहतें संवधिान के अनुच्छेद 226 के तहत सार्वजनिक कानून उपचार में दी जा सकती है। (पैरा 13) (37-एच, 38-ए-जी)

1.2. उच्च न्यायालय ने ए.ए.जी. के माध्यम से न्यायालय में उपस्थित अधिकारियों द्वारा दिए गए मौखिक बयानों पर भरोसा किया था और प्रश्नगत भूमि के हक/स्वामित्व के संबंध में उसे रियायत माना जाता है। अपीलकर्ता ने अपने जवाबी शपथ पत्र में केवल सरकार से प्राप्त एक पत्र का हवाला दिया, जिसमें बताया गया था कि यह भूमि निजी भूमि है। कोई इस बात की सरहाना करने में विफल रहता है कि उक्त कथन और जवाबी शपथ पत्र में दिए गए कथन प्रत्यथी के पक्ष में भूमि के हक/स्वामित्व को मान्यता देने वाली रियायत के समान है। ऐसा बयान अपने आप में किसी व्यक्ति को अचल संपत्ति के संबंध में स्वामित्व प्रदान नहीं कर सकता है। पक्षकारों के बीच मुकदमे का फैसला करने में न्यायालय ऐसे बयानों की प्रासंगिकता और प्रभाव को तोलने और मूल्यांकन करने के अपने बोझ से मुक्त नहीं है। (पैरा 14) (38-एच, 39-ए-बी)

1.3. उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि क्या न्यायालय से कोई महत्वपूर्ण तथ्य छुपाया गया था। मामले की

भयावहता व जटिलता को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय को पूरी निष्पक्षता से आधिकारिक प्रत्यर्थीगण को अपने विस्तृत प्रति शपथ पत्र दाखिल करने और विकार करने के लिए उनके पास मौजूद संपूर्ण सामाग्री और अभिलेख पेश करने का निर्देश देना चाहिए था। (पैरा 15 और 17) (39-एफ, 40-एफ)

2. महाराष्ट्र राज्य और जिला कलेक्टर द्वारा अपनाया गया रूख कल्पना से भी अजीब है। यह समझना कठिन है कि वे न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में प्रभावी रूप से भाग लेने के बजाय मूक दर्शक क्यों बने रहे। कोई स्पष्टीकरण नहीं यह बताना होगा कि उन्होंने उच्च न्यायालय में रिट याचिका पर जवाब दाखिल न करने का विकल्प क्यों चुना है। (पैरा 18) (41-ए)

3.1. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उचित रिट जारी करने का उच्च न्यायालय की क्षेत्राधिकार विशेष रूप से परमादेश रिट अत्यधिक विवेकाधीन है। अनुतोष का अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है। निम्न में से अनुतोष देने से इंकार करने का एक आधार यह है कि उच्च न्यायालय के समक्ष आने वाला व्यक्ति अस्पष्ट देरी का दोषी है और अस्पष्ट देरी का एवं असावधानी का दोषी है। रिट के लिए अदालत जाने में अत्यधिक देरी रिट को अस्वीकार करने का पर्याप्त आधार है। सिद्धांत यह है कि सार्वजनिक कानून क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली अदालतें पुराने

दावों के आंदोलन और उन मामलों को उखाड़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती है। जहां तीसरे पक्ष के अधिकार अंतराल में अर्जित हो सकते हैं। (पैरा 19) (41-डी-ई)

3.2. उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए कर्तव्यबद्ध है कि सभी प्रासंगिक तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखने और राज्य और उसके उपकरणों से उचित शपथ पत्र के अभाव में भी स्वयं निर्णय लेने के लिए कि क्या कोई मामला सभी अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। किसी सार्वजनिक कानून उपाय में परमादेश की एकपक्षीय रिट आदेश या निर्देश करने जैसा कुछ नहीं है। इसके अलावा विवादित कार्यवाही या निष्क्रियता की वैधता पर विचार करते समय अदालत खुद को राज्य की दलीलों तक ही सीमित नहीं मानेगी बल्कि खुद को संतुष्ट करने के लिए स्वतंत्र होगी कि इस तरह का कोई मामला अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का इस्तेमाल करने वाले किसी व्यक्ति के द्वारा बनाया गया है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते समय न्यायालय इस पर विचार करने के लिए बाध्य है कि क्या (ए) रिट याचिका के फैसले में तथ्य के कोई जटिल और विवादित प्रश्न शामिल हो और क्या उन्हें संतोषजनक ढंग से हल किया जा सकता है, (बी) याचिका सभी भौतिक

तथ्यों का खुलासा करती है, (सी) याचिकाकर्ता के पास लडाई के समाधान के लिए कोई वैकल्पिक या प्रभावी उपाय है, (डी) क्षेत्राधिकार का उपयोग करने वाला व्यक्ति अस्पष्ट देरी और देरी का दोषी है, (ई) किसी भी परिसीमा कानून के द्वारा प्रथम दृष्ट्या वर्जित है, (एफ) राहत अनुतोष देना सार्वजनिक निति के विरूद्ध है या किसी वैध कानून के और कई अन्य द्वारा वर्जित है (पैरा 22) (41-ए, बी, सी, डी, ई, एफ, जी)

3.3. उचित मामलों में न्यायालय अपने विवेक से राज्य या उसके सहायक को निर्देश दे सकता है कि वे न्यायालय के विचारार्थ सभी प्रासंगिक तथ्यों को सही और सटीक रूप से रखते हुए उचित शपथ पत्र दायर करें और विशेष रूप से उन मामलों में जहां सार्वजनिक राजस्व और सार्वजनिक हित सम्मिलित हो। ऐसे निर्देशों का राज्य द्वारा हमेशा अनुपालन किया जाना आवश्यक है। सार्वजनिक कानून उपचार में कोई अनुतोष केवल इस आधार पर नहीं दी जा सकती कि राज्य ने रिट याचिका का विरोध करते हुए अपना जवाबी शपथ पत्र दायर नहीं किया है। इसके अलावा खाली और आत्म पराजित शपथ पत्र या सरकारी प्रवक्ताओं के बयान अपने आप में किसी व्यक्ति को सार्वजनिक उपचार में कोई अनुतोष देने का आधार नहीं बनाते, जिसके लिए वह अन्यथा कानून में हकदार नहीं है। (पैरा 22) (42-एच, 43-ए-बी)

3.4. रिट याचिका और पुनर्विलोकन याचिका का निपटारा करते समय उच्च न्यायालय द्वारा इनमें से किसी भी पैरामीटर को ध्यान में नहीं रखा गया है। उपरोक्त कारणों से, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है। नतीजतन भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के प्रावधानों के तहत जारी सभी अधिसूचनाएं एवं पारित अवार्ड और सिविल कोर्ट को दिए गए संदर्भ सहित अपास्त की जाती है। (पैरा 23, 24) (43-सी-डी)

4.1. अत्यधिक असंतोषजनक स्थिति को दर्शाने वाले राज्य सरकार के आचरण के बारे में एक शब्द कहे बिना मामले का निपटारा करना उचित नहीं होगा यह न्यायालय इस मामले में राज्य के आचरण पर गंभीर चिंता व्यक्त करता है। यह कि न्यायालय का अपने संवैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन करने में सक्षम बनाने में उचित शपथ पत्र दाखिल करके सही और प्रासंगिक तथ्य पेश करने राज्य का संवैधानिक दायित्व और कर्तव्य है। न्यायालय द्वारा नियम जारी होने के बाद राज्य और अन्य अधिकारी मामले से संबंधित संपूर्ण रिकार्ड पेश करने के लिए बाध्य हैं। सरकारों को यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि मुकदमेबाजी के मामले में भी उन्हें एक निजी पक्ष के समान विवेक का आधार है। इस संबंध में सरकारों को कोई भी असिमित विवेक प्राप्त नहीं है। किसी को भी राज्य को यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि वह समाज की सामूहिक इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं। (पैरा 27) (43-एच,44-ए-सी)

4.2. वर्तमान मामले में राज्य ने सरकार के उच्च अधिकारियों के माध्यम से अपना शपथ पत्र दायर करने के बजाए निजले अधिकारियों का उपयोग मौखिक बयान दोनों के लिए किया और वह भी अपने ए.जी.जी. के माध्यम से। उच्च न्यायालय में इस मर्ज के लिए तत्काल उपचार की आवश्यकता होती है। आशा है कि सरकार जिम्मेदार तरीके से आचरण करेगी और उचित शपथ पत्र और उसके पास उपलब्ध दस्तावेज दाखिल करके सही और प्रासंगिक तथ्यों को रखकर उच्च न्यायालय की सहायता करेगी। (पैरा 28) (44-सी-डी)

सिविल अपीलय क्षेत्राधिकारः 2008 की सिविल अपील संख्या 6652

2007 की समीक्षा याचिका स्टाम्प संख्या 5407 में बाॅम्बे में न्यायिक उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 10.08.2007 से।

साथ

2008 की सिविल अपील संख्या 6653

रंजित कुमार और शेखर नाफादे, वरिष्ठ अधिवक्ता, ब्रिजेश पाण्डे और ए.एस. भस्म अपीलार्थी के लिए

आर.एफ. नारीमन, वरिष्ठ अधिवक्ता, केविन गुलाटी, प्रवीन सटले, सौरभ मित्रा, राजीव शंकर द्विवेदी और रवींद्र केशवराव अदसुरे प्रत्यर्थीगण के लिए

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

बी. सुदर्शन रेड्डी, न्यायाधिपति

1. देरी माफ की गई एसएलपी (सी) संख्या 27475 इतने का 2008 (सीसी संख्या)

2. छूट दी गई

3. 20.04.2005 को पहले प्रत्यर्थी संख्या 01 ने निम्नलिखित अनुतोष का दावा करते हुए यह रिट याचिका दायर कीः

> "ए) अधिग्रहण के बिना भूमि का उपयोग करने की विवादित कार्यवाही असंवैधानिक है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के प्रावधानों के विपरीत है। राज्य, राज्य का कोई भी प्राधिकारी भारत के किसी भी नागरिक को बिना विधि की प्रक्रिया के एवं कानून के अनुसार उस संपति का अधिग्रहण किए बिना संपत्ति से वंचित करने का हकदार नहीं है। चूंकि प्रश्नगत भूमि का उपयोग सिडको के लिए

बिना किसी मुआवजे के भुगतान या उसका अधिग्रहण किए बिना किया जा रहा है, इसलिए पूरी कार्यवाही अवैध है।

बी) प्रत्यर्थी नं. 1 प्रत्यर्थी संख्या 02 के स्वामित्व वाला निगम है। उक्त ट्रस्ट के स्वामित्व वाली निजी भूमि को हड़पने और अवैध रूप से कब्जा करने की उम्मीद नहीं है जिस याचिकाकर्ता ट्रस्टी है। ऐसे अनाधिकृत उपयोगकर्ता के लिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 ट्रस्ट को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है

सी) विकल्प में यदि प्रत्यर्थी सं. 1 भूमि वापस करने की स्थिति में नहीं है तो वह कार्यकाल में ट्रस्ट को वैकल्पिक मुआफी जमीन आवंटित करने के लिए उत्तरदायी है।"

4. यहां अपीलकर्ता और साथ ही राजस्व मंत्रालय के सचिव और कलेक्टर, रायगढ़ के माध्यम से महाराष्ट्र राज्य को उक्त रिट याचिका में पार्टी प्रत्यर्थी के रूप में शामिल किया गया है। पहला प्रत्यर्थी सं. 01/रिट याचिकाकर्ता सर खान बहादुर होर्मासजी भिवंडीवाला ट्रस्ट (इसके बाद उक्त ट्रस्ट के रूप में संदर्भित) के ट्रस्टियों में से होने का दावा करता है और रिट याचिका ट्रस्टी के रूप में दायर की गई है। पहले प्रत्यर्थी सं. 01 ने अपनी रिट याचिका में दलील दी कि उक्त ट्र ª स्ट ग्राम बेलपाड़ा, तालुका पनवेल, जिला रायगढ़ की भूमि गाट संख्या 8/0 का मालिक है, जिसकी माप 19

एकड़ 26.4 गुणा है, जो वर्तमान में ग्राम खारघर तालुका पनवेल जिला रायगढ़ की सर्वेक्षण संख्या 465 है, जिसका माप 9 हेक्टेयर 96 एकड़ है। उनके अनुसार राजस्व रिकाॅर्ड में प्रविष्टियां प्रश्नगत भूमि के संबंध में उक्त ट्रस्ट के स्वामित्व का खुलासा करती है। न्यू बाॅम्बे प्रोजेक्ट के कार्यान्वयन के प्रयोजनों के लिए रायगढ़ जिले और ठाणे जिले के पनवेल तालुका से बड़ी मात्रा में भूमि का अधिग्रहण वर्ष 1972 या उसके आसपास किया गया था, लेकिन जहां तक प्रश्नगत भूमि का सवाल है, ट्रस्ट उसी के बाद से मालिक बना हुआ है। किसी भी समय सरकार द्वारा अधिग्रहण नहीं किया गया था।

5. रिट याचिका में शिकायत यह थी कि 'सिडको अवैध रूप से और अनाधिकृत रूप से उक्त भूमि का उपयोग बिना अधिग्रहण किए या कोई मुआवजा दिए बिना कर रहा है।' इस संबंध में सिडको और महाराष्ट्र सरकार और कलेक्टर, रायगढ़ के बीच आंतरिक पत्राचार पर भरोसा किया गया था। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने 16.08.2004 को तहसीलदार को एक अभ्यावेदन भेजा था जिसमें तहसीलदार से उनका नाम उत्तराधिकारी के रूप में दर्ज करने की मांग की गई थी। संबंधित प्राधिकारियों से कोई प्रतिक्रिया न मिलने पर उन्होने बंबई उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की। रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 01 द्वारा स्थापित मामले का सारांश यह

था कि अपीलकर्ता ने उक्त भूमि का उपयोग बिना अधिग्रहण किया और ट्रस्ट को भूमि के स्वामित्व और कब्जे से वंचित कर दिया।

6. अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका के दाखिल होने के विरोध में अपना शपथ पत्र दायर किया। जवाबी शपथ पत्र में अपीलकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ दलील दी कि रिट याचिकाकर्ता 35 साल से अधिक समय तक चुप रहा है और उसने अत्यधिक देरी के साथ रिट याचिका दायर करने का विकल्प चुना है जो रिट याचिका को सरसरी तौर पर खारिज करने का आधार बनता है। यह भी दलील दी गई की तथ्यों के कई विवादित प्रश्न शामिल है जिनका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में संतोषजनक ढ़ंग से निर्णय नहीं लिया जा सकता हैै। उक्त जवाबी शपथ पत्र के पैरा11 में अपीलकर्ता ने दलील दी की नवी मुंबई परियोजना के लिए भूमि की आवश्यक्ता है। पिछले 35 साल से अधिक समय से जमीन पर उसका कब्जा बना हुआ है, हालांकि उन दलीलों को ध्यान में रखते हुए शपथ पत्र में यह भी कहा गया था कि सिडको को ’सरकारी पत्र से पता चला है कि यह एक निजी भूमि है और चूंकि यह एक निजी भूमि है, इसलिए यह सिडको के कब्जे में है और नवी मुबंई के लिए आवश्यक है। परियोजना, सिडको सरकार से कानून की उचित कार्यवाही का पालन करके इसे हासिल करने का अनुरोध कर रही है।‘

7. महाराष्ट्र राज्य और कलेक्टर रायगढ़ न केवल अपने जवाबी शपथ पत्र दाखिल करने में विफल रहे, बल्कि अदालत में मौजूद उनके अधिकारियों ने विद्वान ए.जी.पी. को निर्देश दिया, जिन्होंने बदले में एक मौखिक बयान दिया, जिसे उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में व्यक्त किया है। इस आशय के लिए 'न्यायालय में मौजूद श्रीमति रेवती ए. गायकर, विशेष भूमि ग्रहण अधिकारी, पनवेल और श्री एमएन सनप, तहसीलदार, पनवेल के निर्देश पर विद्वान ए.जी.पी. श्री मालवंकर एक बयान देते है कि दस्तावेजों पर विचार करने पर 93 एआरएस को छोड़कर उनके कब्जे में है इसके अतिरिक्त छोडकर उनके पास यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि बाकी जमीन का अधिग्रहण किया गया था।'

8. उच्च न्यायालय ने विद्वान ए.जी.पी. द्वारा दिए गए मौखिक बयान और अपीलकर्ता के जवाबी शपथ पत्र पर भरोसा करते हुए रिट याचिका का निपटारा करते हुए कलेक्टर, रायगढ़ को उचित प्रक्रिया का पालन करके भूमि अधिग्रहण के लिए कदम उठाने और एक वर्ष के भीतर अधिग्रहण की कार्यवाही पूरी करने का निर्देश दिया। अपीलकर्ता से मांगपत्र प्राप्त करने के संबंध मे यह प्रश्न कि क्या पहला प्रत्यर्थी सं. 01/रिट याचिकाकर्ता 35 वर्षों से अधिक की अवधि के लिए भूमि पर कब्जे के लिए अपीलकर्ता से किसी भी मुआवजे के भुगतान का हकदार था, उचित कार्यवाही में उठाए जाने के लिए खुला छोड़ दिया गया था।

9. उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 07.02.2006 को पारित आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या....../2007 (सीसी 2080/2007) दायर की, लेकिन पहले समीक्षा में पुनः पुनर्विलोकन उच्च न्यायालय के समक्ष दायर करने की अनुमति के साथ इसे वापस ले लिया। दिनांक 10.08.2007 के इस न्यायालय के आदेश से वापस लिए जाने से विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया गया।

अतः विशेष अनुमति द्वारा ये अपीलें।

10. अपीलकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ वकील श्री रंजीत कुमार ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि उच्च न्यायालय को कमियों और विलंब के आधार पर रिट याचिका को सरसरी तौर पर खारिज कर देना चाहिए था क्योंकि भूमि पर कब्जा खोने की 35 वर्ष से अधिक की अवधि बाद प्रत्यर्थी/रिट याचिकाकर्ता ने अदालत से संपर्क किया। यह भी प्रस्तुत किया गया कि विचाराधीन भूमि के स्वामित्व से संबंधित कई विवादित प्रश्न विचाराधीन हैं जिनका निर्णय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 केे तहत कार्यवाही में नहीं किया जा सकता। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि पहला प्रत्यर्थी सं. 01 भौतिक तथ्यांे को छिपाने का दोषी है जो स्वयं रिट याचिका को खारिज करने के लिए पर्याप्त है। यह प्रस्तुत किया गया कि प्रत्यर्थी सं. 01 किसी भी समय भूमि का मालिक नहीं था और इसलिए रिट याचिका में कोई राहत नहीं दी जा सकती थी।

11. प्रत्यर्थी सं. 01 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री आरएफ नरीमन ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थी सं. 01 के स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद नहीं है क्योंकि महाराष्ट्र राज्य और जिला कलेक्टर ने अपने अधिकारियों के माध्यम से खुली अदालत में बयान दिया है कि प्रश्नगत भूमि का पहले अधिग्रहण नहीं किया गया था और वह निजी भूमि बनी रही। श्री नरीमन ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका का विरोध करते हुए जवाबी शपथ पत्र में अपीलकर्ता द्वारा दिए गए कथनों पर भी भरोसा किया, जिसमें कहा गया था कि सिडको को सरकारी पत्र से पता चला है कि भूमि एक निजी भूमि है और इसलिए, उसने सरकार से अनुरोध किया था विधि में विहित प्रक्रिया का पालन करते हुए भूमि का अधिग्रहण करें।

12. हमने प्रतिद्वंद्वियों की दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है।

13. ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने अपने फेसले में ज्यादातर विद्वान ए.जी.पी. के माध्यम से दिए गए मौखिक बयान और अपीलकर्ता द्वारा अपने जवाबी शपथ पत्र में दिए गए कुछ अस्पष्ट बयानों पर भरोसा किया और तदनुसार भूमि के अधिग्रहण का निर्देश देने वाली रिट याचिका का निपटारा कर दिया। उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि उक्त मौखिक बयान और अपीलकर्ता द्वारा अपने जवाबी शपथ पत्र में दिए गए कथनों का क्या प्रभाव है। क्या इस तरह का मौखिक बयान इस आशय के कथनों के साथ मिलकर कि भूमि अपने आप में एक

निजी भूमि है, प्रत्यर्थी के स्वामित्व को मान्यता देने के बराबर होगी? तथ्य यह है कि आक्षेपित आदेश में कोई जिक्र नहीं है कि सर खान बहादुर होरमासजी भिवंडीवाला ट्रस्ट रिट याचिका दायर करने की तारीख तक वैध और मौजूदा स्वामित्व वाली भूमि का वास्तविक और पूर्ण मालिक बना हुआ है। न ही भूमि की प्रकृति के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा कोई निष्कर्ष निकाला गया है, जो कि सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है जिसका इस मुद्दे पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है कि रिट याचिका में कोई राहत पाने के लिए प्रत्यर्थी का अधिकार क्या है? इस बात का भी कोई निष्कर्ष नहीं है कि जिस रिट याचिकाकर्ता ने एक व्यक्ति के रूप में रिट याचिका दायर की है, वह उक्त ट्रस्ट का ट्रस्टी है और इस प्रकार ट्रस्ट की ओर से मुकदमा चलाने का हकदार है। उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि ट्रस्ट को याचिकाकर्ता के रूप में शामिल किए बिना ट्रस्टी होने का दावा करने वाली रिट याचिका दायर करने का क्या प्रभाव होगा। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा उसकी रिट याचिका में दिए गए उस बयान को नजरअंदाज कर दिया, जिसमें उसने तहसीलदार को अपना नाम "वारिस" के रूप में दर्ज करने की मांग की थी। किसी ट्रस्ट की संपत्ति के "उत्तराधिकारी" होने के लिए किसी व्यक्ति का नाम राजस्व रिकॉर्ड में कैसे दर्ज किया जा सकता है? उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका में दिए गए ऐसे बयान के प्रभाव पर कभी विचार नहीं किया। उच्च न्यायालय ने इस बात पर भी विचार नहीं किया कि क्या दावा की गई

राहतें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सार्वजनिक कानून उपाय में दी जा सकती है।

14. उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से विद्वान ए.जी.पी. के माध्यम से अदालत में उपस्थित अधिकारियों द्वारा दिए गए मौखिक बयान पर भरोसा किया और प्रश्नगत भूमि के शीर्षक/स्वामित्व के संबंध में रियायत माना। अपीलकर्ता ने अपने जवाबी शपथ पत्र में केवल सरकार से प्राप्त एक पत्र का हवाला दिया, जिसमें बताया गया था कि यह भूमि निजी भूमि है। हम इस बात की सराहना करने में विफल है कि उक्त कथन और जवाबी शपथ पत्र में दिए गए कथन प्रत्यर्थी के पक्ष में प्रश्न में भूमि के हक/स्वामित्व को मान्यता देने वाली रियायत के समान है। ऐसा बयान अपने आप में किसी व्यक्ति को अचल संपत्तियों के संबंध में स्वामित्व प्रदान नहीं कर सकता है। पार्टियों के बीच मुकदमे का फेसला करने में अदालतें ऐसे बयानों की प्रासंगिकता और प्रभाव को तौलने और मूल्यांकन करने के अपने बोझ से मुक्त नहीं है।

15. रिट याचिका 20 अप्रैल, 2005 को दायर की गई थी, लेकिन याचिकाकर्ता ने 13 अप्रैल, 2005 को खुद को विक्रेता के रूप में बताते हुए सुश्री हेमलता बेदी और उर्मिश उदानी के पक्ष में भूमि के खरीदार के रूप में पुष्टिकरण विलेख निष्पादित किया। अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में दायर अपने पुनर्विलोकन आवेदन में बताया कि रिट याचिका दायर करने की

तारीख तक पहला प्रत्यर्थी सं. 01 भूमि का मालिक नहीं था, क्योंकि उसने 13 अप्रैल, 2005 को पुष्टिकरण विलेख निष्पादित किया था। जब अपीलकर्ता ने अपने पुनर्विलोकन आवेदन में यह बताया, तो उच्च न्यायालय ने इसे खारिज कर दिया और रिट याचिकाकर्ता द्‌वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर भरोसा करते हुए पुनर्विलोकन याचिका खारिज कर दी कि 20 अप्रैल, 2005 रिट याचिका अदालत में दाखिल करने के लिए 13 अप्रैल, 2005 से बहुत पहले तैयार की गई थी। तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी ने रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान इस तथ्य को कभी भी अभिलेख पर नहीं लाया। उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि क्या न्यायालय की ओर से कोई महत्वपूर्ण तथ्य छुपाया गया है। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्‌वारा सव्यं को पुष्टिकरण विलेख में विक्रेता के रूप में वर्णित करने के प्रभाव पर विचार नहीं किया, जो कि 26 अगस्त, 1982 के संवहन विलेख में दिए गए कथनों के अनुरूप नहीं है। उच्च न्यायालय ने स्वयं को यह नहीं बताया कि क्या ऐसा है जटिल और विवादित तथ्यों पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में संतोषजनक ढंग से निर्णय लिया जा सकता है। न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित हुआ कि अनुतोष पहले ही दी जा चुकी थी क्योंकि रिट याचिका के निपटान के बाद अधिग्रहण की कार्यवाही शुरू हो गई थी। हम रिट याचिका और पुनर्विलोकन याचिका के निपटारे में उच्च न्यायालय के तरीके और दृष्टिकोण के बारे में अपनी आपत्ति व्यक्त करने के लिए बाध्य हैं।

16. हमारी राय में, उच्च न्यायालय को प्रत्यर्थी द्वारा प्रार्थना के अनुसार अनुतोष देने से पहले पुष्टि विलेख की सामग्री के साथ-साथ दिनांक 26 अगस्त, 1982 के हस्तांतरण विलेख की जांच करनी चाहिए थी। 26 अगस्त, 1982 के हस्तांतरण विलेख से यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि इसे क्रेता के रूप में केवल एक व्यक्ति सुश्री हेमलता बेदी के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जबकि पुष्टिकरण विलेख में क्रेता के रूप में सुश्री हेमलता बेदी के साथ उर्मिष उदानी का नाम भी दर्शाया गया है। दस्तावेज से यह स्पष्ट नहीं है कि अचानक उर्मीश उदानी का नाम खरीदार के रूप में कैसे दिखाया गया है। परिस्थितियां अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा की गई दलील को विश्वसनीयता प्रदान कर सकती हैं कि उर्मिष उदानी ने जमीन नहीं खरीदी बल्कि मुकदमेबाजी की। हालाँकि, हम इस सवाल पर कोई निर्णायक राय व्यक्त नहीं करना चाहते हैं कि क्या पार्टियाँ किसी सट्टेबाजी मुकदमेबाजी में लिप्त हैं। ये वे पहलू हैं जिन पर प्रतिवादी को राहत देने से पहले उच्च न्यायालय को विचार करना चाहिए था।

उपरोक्त वर्णित महत्वपूर्ण मुद्दों पर निष्कर्ष के अभाव में प्रत्यर्थी को कोई राहत नहीं दी जा सकती थी।

17. मामले की भयावहता और जटिलता को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय को पूरी निष्पक्षता से आधिकारिक प्रत्यर्थीगण को अपने विस्तृत जवाबी शपथ पत्र दाखिल करने और विचार के लिए उनके पास मौजूद

संपूर्ण सामग्री और अभिलेख पेश करने का निर्देश देना चाहिए था। ज्ञात हो कि यहां अपीलकर्ता द्‌वारा दायर जवाबी शपथ पत्र स्पष्ट रूप से रिट याचिका की स्वीकृति का विरोध करने तक ही सीमित था। जैसा कि आदेश से स्पष्ट है“नियम। तुरंत सुनवाई...।” नियम जारी करने के बाद, रिट याचिका का निपटारा दाखिल स्तर पर ही कर दिया गया।

18. हम यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं कि मामले ने हमें उलझन में डाल दिया है। महाराष्ट्र राज्य और जिला कलेक्टर द्‌वारा अपनाया गया रूख कल्पना से भी अजीब है। यह समझ पाना कठिन है कि वे न्यायालय की कार्यवाही में प्रभावी ढंग से भाग न लेकर मूकदर्शक क्यों बन रहे। इस बारे में कोई स्पष्टीकरण सामने नहीं आ रहा है कि उन्होंने उच्च न्यायालय में रिट याचिका पर अपना जवाब दाखिल न करने का विकल्प क्यों चुना है। हालाँकि, इन अपीलों में राज्य सरकार के साथ-साथ अपीलकर्ता ने रिट याचिकाकर्ता को किसी भी तरह की अनुतोष देने का विरोध करते हुए रिट याचिका में दिए गए रिट याचिकाकर्ता के प्रत्येक बयान और दावे पर विवाद करते हुए विस्तृत शपथ पत्र दायर किए। लेकिन इस अदालत में भी महाराष्ट्र राज्य ने अपना शपथ पत्र दायर करके कार्यवाही में भाग नहीं लिया और मामले में कोई सहायता प्रदान नहीं की।

19. यह अच्छी तरह से स्थापित है और हमारे लिए इसे दोबारा कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत,

उचित रिट विशेष रूप से परमादेश की रिट जारी करने का उच्च न्यायालय को अधिकार क्षेत्र अत्यधिक विवेकाधीन है। अनुतोष के अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। अनुतोष देने से इनकार करने का एक आधार यह है कि उच्च न्यायालय में जाने वाला व्यक्ति अस्पष्ट देरी और लापरवाही का दोषी है। रिट के लिए अदालत जाने में अत्यधिक देरी रिट को अस्वीकार करने का पर्याप्त आधार है। सिद्धांत यह है कि सार्वजनिक कानून क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली अदालतें पुराने दावों के आंदोलन और उन मामलों को उखाड़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती है जहां तीसरे पक्ष के अधिकार अंतराल में अर्जित हो सकते हैं।

20. अपीलकर्ता ने अपने जवाब में स्पष्ट और स्पष्ट शब्दों में रिट याचिका को स्वीकार करने का विरोध करते हुए दलील दी कि रिट याचिकाकर्ता 35 साल से अधिक समय तक चुप रहा और देर से रिट याचिका दायर की। यह दावा किया गया था कि अत्यधिक देरी और देरी के कारण रिट याचिका कानूनी कमजोंरियों से ग्रस्त है और इसलिए इसे तुरंत खारिज कर दिया जा सकता है। उच्च न्यायालय ने किसी भी निष्कर्ष को दर्ज नहीं किया और दूरगामी परिणाम वाली ऐसी याचिका को नजरअंदाज कर दिया।

21. जैसा कि ऊपर देखा गया है, उच्च न्यायालय स्पष्ट रूप से रिट याचिका की सुनवाई के दौरान दिए गए मौखिक बयान और उच्च न्यायालय

में अपीलकर्ता द्वारा दायर शपथ पत्र में किए गए कुछ अस्पष्ट और आत्म-पराजय कथनों से प्रभावित था।

22. हमारी राय में, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने और राज्य और उसके उपकरणों की ओर से उचित शपथ पत्र के अभाव में भी स्वयं निर्णय लेने के लिए बाध्य है। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर क्या कोई ऐसा मामला बनता है जिसमेें हस्तक्षेप की आवश्यकता है। किसी सार्वजनिक कानून उपाय में परमादेश की एकपक्षीय रिट, आदेश या निर्देश जारी करने जैसा कुछ नहीं है। इसके अलावा, विवादित कार्यवाही या निष्क्रियता की वैधता पर विचार करते समय अदालत खुद को राज्य की दलीलों तक ही सीमित नहीं मानेगी, बल्कि खुद को संतुष्ट करने के लिए स्वतंत्र होगी कि क्या इस तरह का कोई मामला अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का इस्तेमाल करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा बनाया गया है। संविधान अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायालय इस पर विचार करने के लिए बाध्य है कि क्याः

(ए) रिट याचिका के निर्णय में तथ्यों कि किसी भी जटिल और विवादित प्रश्न शामिल हैं और क्या उन्हें संतोषजनक ढंग से हल किया जा सकता है;

(बी) याचिका सभी तथ्यों का खुलासा करती है;

(सी) याचिकाकर्ता के पास विवाद के समाधान के लिए कोई वैकल्पिक या प्रभावी उपाय है;

(डी) क्षेत्राधिकार का उपयोग करने वाला व्यक्ति अस्पष्ट देरी और लापरवाही का दोषी है;

(ई) परिसीमा के किसी भी कानून द्वारा प्रथम दृष्टया वर्जित;

(एफ) अनुतोष देना सार्वजनिक नीति के विरूद्ध है या किसी वैध कानून द्वारा वर्जित है; और कोई अन्य कारक।

उपयुक्त मामलों में न्यायालय अपने विवेक से राज्य या उसके सहायकों को, जैसा भी मामला हो, निर्देश दे सकता है कि वे न्यायालय के विचारार्थ सभी प्रासंगिक तथ्यों को सही और सटीक रूप से रखते हुए उचित शपथ पत्र दायर करें और और विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां सार्वजनिक राजस्व और सार्वजनिक हित शामिल हों। ऐसे निर्देशों का राज्य द्वारा हमेशा अनुपालन किया जाना आवश्यक है। सार्वजनिक कानून उपचार

में कोई अनुतोष केवल इस आधार पर नहीं दी जा सकती कि राज्य ने रिट याचिका का विरोध करते हुए अपना जवाबी शपथ पत्र दायर नहीं किया है। इसके अलावा, खाली और आत्म-पराजित शपथ पत्र या सरकारी प्रवक्ताओं के बयान अपने आप में किसी व्यक्ति को सार्वजनिक उपचार में कोई अनुतोष देने का आधार नहीं बनते हैं, जिसके लिए वह अन्यथा कानून में हकदार नहीं है।

23. रिट याचिका और पुनर्विलोकन याचिका का निपटारा करते समय उच्च न्यायालय द्वारा इनमें से किसी भी पैरामीटर को ध्यान में नहीं रखा गया है।

24. उपरोक्त कारणों से हम विवादित आदेशों को रद्द करते हैं और मामले को गुण-दोष के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से विचार करने के लिए भेजते हैं। नतीजनत, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रावधानों के तहत पारित अवार्ॅड और सिविल कोर्ट को दिए गए संदर्भ सहित जारी की गई सभी अधिसूचनाएं रद्द कर दी जाती है।

25. इन अपीलों की सुनवाई के दौरान न केवल शपथ पत्र और अतिरिक्त शपथ पत्र बल्कि कुछ दस्तावेज भी रिकार्ॅड पर रखे गए है जिनका मामले की योग्यता पर महत्वपूर्ण असर हो सकता है। ये शपथ पत्र और इस अदालत में दायर किए गए दस्तावेज रिट कार्यवाही का हिस्सा

बनेंगे। इस मामले पर उच्च न्यायालय द्वारा नये सिरे से विचार किये जाने की आवश्यकता है।

26. यदि पक्षकार ऐसा चुनते हैं तो उन्हें अपने संबंधित अभिवचन और अतिरिक्त शपथ पत्र को, यदि कोई हो, दाखिल करने की स्वतंत्रता दी जाती है, जो उच्च न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए प्राप्त किया जाएगा। हम यह कहने में जल्दबाजी कर सकते है कि हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। दोनों पक्षों की सभी दलीलों को स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय द्वारा उनके निर्धारण के लिए खुला रखा गया है।

27. अत्यधिक असंतोषजनक स्थिति को दर्शाने वाले राज्य सरकार के आचरण के बारे में एक शब्द कहे बिना मामले का निपटारा करना उचित नहीं होगा। इस मामले में राज्य ने जिस तरह से आचरण किया है, उस पर हम गंभीर चिंता व्यक्त करते हैं। यह राज्य का संवैधानिक दायित्व और कर्तव्य है कि वह न्यायालय को अपने संवैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन करने में सक्षम बनाने के लिए उचित शपथ पत्र दाखिल करके सही और प्रासंगिक तथ्य पेश करे। न्यायालय द्वारा नियम जारी होने के बाद राज्य और अन्य अधिकारी मामले से संबंधित संपूर्ण रिकाॅर्ड पेश करने के लिए बाध्य हैं सरकारों को यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि मुकदमेबाजी के मामले में भी उन्हें एक निजी पक्ष के समान विवेक का अधिकार नहीं है।

इस संबंध में सरकारों को कोई असीमित विवेक प्राप्त नहीं है। किसी को भी राज्य को यह याद दिलाने की जरूरत नहीं है कि वे समाज की सामूहिक इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

28. वर्तमान मामले में राज्य ने सरकार के उच्च अधिकारियों के माध्यम से अपना शपथ पत्र दायर करने के बजाय उच्च न्यायालय में अपने ए.जी.पी. के माध्मय से निचले अधिकारियों का उपयोग मौखिक बयान देने के लिए किया। इस मर्ज के लिए तत्काल उपचार की आवश्यकता होती है। हमें उम्मीद है कि सरकार जिम्मेदार तरीके से आचरण करेगी और उचित शपथ पत्र और उसके पास उपलब्ध दस्तावेज दाखिल करके सही और प्रासंगिक तथ्य रखकर उच्च न्यायालय की सहायता करेगी। हम यह भी आशा और विश्वास करते हैं कि सरकार के कानूनी सलाहकार शपथ पत्र तैयार करने में अधिक क्षमता और ध्यान प्रदर्शित करेंगे।

बाड को घास न खाने दें.

29. इन टिप्पणियों के साथ, हम तदनुसार अपील की अनुमति देते हैं।

बी.बी.बी.

अपील की अनुमति

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुश्री रेनु मोटवानी (आर.जे.एस) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।